BA-IIIyr

प्रथमप्रश्नपत्र
समाधिपाद

योगसूत्र, योग दर्शन का मूल ग्रंथ है। यह छः दर्शनों में से एक शास्त्र है और योगशास्त्र का एक ग्रंथ है। योगसूत्रों की रचना 5000 साल के पहले पतंजलि ने की। इसके लिए पहले से इस विषय में विद्यमान सामग्री का भी इसमें उपयोग किया।[1] योगसूत्र में चित्त को एकाग्र करके ईश्वर में लीन करने का विधान है। पतंजलि के अनुसार **चित्त की वृत्तियों को चंचल होने से रोकना** (*चित्तवृत्तिनिरोधः*) ही योग है। अर्थात् मन को इधर-उधर भटकने न देना, केवल एक ही वस्तु में स्थिर रखना ही योग है।

योगसूत्र मध्यकाल में सर्वाधिक अनूदित किया गया प्राचीन भारतीय ग्रन्थ है, जिसका लगभग ४० भारतीय भाषाओं तथा दो विदेशी भाषाओं (प्राचीन जावा भाषा एवं अरबी में अनुवाद हुआ।[2] यह ग्रंथ १२वीं से १९वीं शताब्दी तक मुख्यधारा से लुप्तप्राय हो गया था किन्तु १९वीं-२०वीं-२१वीं शताब्दी में पुनः प्रचलन में आ गया है।[3]

परिचय

) में योगदर्शन का महत्वपूर्ण स्थान है। कालान्तर में योग की नाना शाखाएँ विकसित हुई जिन्होंने बड़े व्यापक रूप में अनेक भारतीय पंथों, संप्रदायों और साधनाओं पर प्रभाव डाला।

"चित्तवृत्ति निरोध" को योग मानकर यम, नियम, आसन आदि योग का मूल सिद्धांत उपस्थित किये गये हैं। प्रत्यक्ष रूप में हठयोग, राजयोग और ज्ञानयोग तीनों का मौलिक यहाँ मिल जाता है। इस पर भी अनेक भाष्य लिखे गये हैं। आसन, प्राणायाम, समाधि आदि विवेचना और व्याख्या की प्रेरणा लेकर बहुत से स्वतंत्र ग्रंथों की भी रचना हुई।

योग दर्शनकार पतंजलि ने आत्मा और जगत् के संबंध में सांख्य दर्शन के सिद्धांतों का ही प्रतिपादन और समर्थन किया है। उन्होंने भी वही पचीस तत्त्व माने हैं, जो सांख्यकार ने माने हैं। इनमें विशेषता यह है कि इन्होंने कपिल की अपेक्षा एक और छब्बीसवाँ तत्त्व 'पुरुषविशेष' या ईश्वर भी माना है।

पतंजलि का योगदर्शन, समाधि, साधन, विभूति और कैवल्य इन चार पादों या भागों में विभक्त है। समाधिपाद में यह बतलाया गया है कि योग के उद्देश्य और लक्षण क्या हैं और उसका साधन किस प्रकार होता है। साधनपाद में क्लेश, कर्मविपाक और कर्मफल आदि का विवेचन है। विभूतिपाद में यह बतलाया गया है कि योग के अंग क्या हैं, उसका परिणाम क्या होता है और उसके द्वारा

अणिमा, महिमा आदि सिद्धियों की किस प्रकार प्राप्ति होती है। कैवल्यपाद में कैवल्य या मोक्ष का विवेचन किया गया है। संक्षेप में योग दर्शन का मत यह है कि मनुष्य को अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ये पाँच प्रकार के क्लेश होते हैं, और उसे कर्म के फलों के अनुसार जन्म लेकर आयु व्यतीत करनी पड़ती है तथा भोग भोगना पड़ता है। पतंजलि ने इन सबसे बचने और मोक्ष प्राप्त करने का उपाय योग बतलाया है और कहा है कि क्रमशः योग के अंगों का साधन करते हुए मनुष्य सिद्ध हो जाता है और अंत में मोक्ष प्राप्त कर लेता है। ईश्वर के संबंध में पतंजलि का मत है कि वह नित्यमुक्त, एक, अद्वितीय और तीनों कालों से अतीत है और देवताओं तथा ऋषियों आदि को उसी से ज्ञान प्राप्त होता है। योगदर्शन में संसार को दुःखमय और हेय माना गया है। पुरुष या जीवात्मा के मोक्ष के लिये वे योग को ही एकमात्र उपाय मानते हैं।

पतंजलि ने चित्त की क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, निरुद्ध और एकाग्र ये पाँच प्रकार की वृत्तियाँ मानी है, जिनका नाम उन्होंने 'चित्तभूमि' रखा है। उन्होंने कहा है कि आरंभ की तीन चित्तभूमियों में योग नहीं हो सकता, केवल अंतिम दो में हो सकता है। इन दो भूमियों में संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात ये दो प्रकार के योग हो सकते हैं। जिस अवस्था में ध्येय का रूप प्रत्यक्ष रहता हो, उसे संप्रज्ञात कहते हैं। यह योग पाँँच प्रकार के क्लेशों का नाश करनेवाला है। असंप्रज्ञात उस अवस्था को कहते हैं, जिसमें किसी प्रकार की वृत्ति का उदय नहीं होता अर्थात् ज्ञाता और ज्ञेय का भेद नहीं रह जाता, संस्कारमात्र बचा रहता है। यही योग की चरम भूमि मानी जाती है और इसकी सिद्धि हो जाने पर मोक्ष प्राप्त होता है।

योगसाधन केे उपाय में यह बतलाया गया है कि पहले किसी स्थूल विषय का आधार लेकर, उसके उपरांत किसी सूक्ष्म वस्तु को लेकर और अंत में सब विषयों का परित्याग करके चलना चाहिए और अपना चित्त स्थिर करना चाहिए। चित्त की वृत्तियों को रोकने के जो उपाय बतलाए गए हैं वह इस प्रकार हैं:-

> अभ्यास और वैराग्य, ईश्वर का प्रणिधान, प्राणायाम और समाधि, विषयों से विरक्ति आदि। यह भी कहा गया है कि जो लोग योग का अभ्यास करते हैं, उनमें अनेक प्रकार को विलक्षण शक्तियाँ आ जाती है जिन्हें 'विभूति' या 'सिद्धि' कहते हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये आठों योग के अंग कहे गए हैं, और योगसिद्धि के लिये इन आठों अंगों का साधन आवश्यक और अनिवार्य कहा गया है। इनमें से प्रत्येक के अंतर्गत कई बातें हैं। कहा गया है जो व्यक्ति योग के ये आठो अंग सिद्ध कर लेता है, वह सब प्रकार के क्लेशों से छूट जाता है, अनेक प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त कर लेता है और अंत में कैवल्य (मुक्ति) का भागी बनता है। सृष्टितत्व आदि के संबंध में योग का भी प्रायः वही मत है जो सांख्य का है, इससे सांख्य को 'ज्ञानयोग' और योग को 'कर्मयोग' भी कहते हैं।

पतंजलि के सूत्रों पर सबसे प्राचीन भाष्य वेदव्यास जी का है। उस पर वाचस्पति मिश्र का वार्तिक है। विज्ञानभिक्षु का 'योगसारसंग्रह' भी योग का एक प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। योगसूत्रों पर भोजराज की भी एक वृत्ति है (भोजवृत्ति)।

पीछे से योगशास्त्र में तंत्र का बहुत सा मेल मिला और 'कायव्यूह' का बहुत विस्तार किया गया, जिसके अनुसार शरीर के अंदर अनेक प्रकार के चक्र आदि कल्पित किए गए। क्रियाओं का भी अधिक विस्तार हुआ और हठयोग की एक अलग शाखा निकली;
जिसमें नेति, धौति, वस्ति आदि षट्कर्म तथा नाड़ीशोधन आदि का वर्णन किया गया। शिवसंहिता, हठयोगप्रदीपिका, घेरण्डसंहिता आदि हठयोग के ग्रंथ है। हठयोग के बड़े भारी आचार्य मत्स्येंद्रनाथ (मछंदरनाथ) और उनके शिष्य गोरखनाथ हुए हैं।

ग्रन्थ का संगठन

यह चार पादों या भागों में विभक्त है-

- समाधि पाद (५१ सूत्र)
- साधना पाद (५५ सूत्र)
- विभूति पाद (५५ सूत्र)
- कैवल्य पाद (३४ सूत्र)

कुल सूत्र = १९५

इन पादों में योग अर्थात् ईश्वर-प्राप्ति के उद्देश्य, लक्षण तथा साधन के उपाय या प्रकार बतलाये गये हैं और उसके भिन्न-भिन्न अंगों का विवेचन किया गया है। इसमें चित्त की भूमियों या वृत्तियों का भी विवेचन है। इस योग-सूत्र का प्राचीनतम भाष्य वेदव्यास का है जिस पर वाचस्पति का वार्तिक भी है। योगशास्त्र नीति विषयक उपदेशात्मक काव्य की कोटि में आता है।[4]

यह धार्मिक ग्रंथ माना जाता है लेकिन इसका धर्म किसी देवता पर आधारित नहीं है। यह शारीरिक योग मुद्राओं का शास्त्र भी नहीं है। यह आत्मा और परमात्मा के योग या एकत्व के विषय में है और उसको प्राप्त करने के नियमों व उपायों के विषय में। यह **अष्टांग योग** भी कहलाता है क्योंकि अष्ट अर्थात् आठ अंगों में पतंजलि ने इसकी व्याख्या की है। ये आठ अंग हैं- **यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि** ।

अनेक परवर्ती धार्मिक व्यक्तियों ने इनपर टीका की और इस शास्त्र के विकास में योगदान किया। विशेष रूप से जैन धर्म के हेमचंद्राचार्य ने अपभ्रंश से निकलती हुई हिंदी में इसको वर्णित करते हुए बड़े संप्रदाय की स्थापना की। उनके संप्रदाय के अनेक मूलतत्व पतंजलति योगसूत्र से लिए गए हैं। स्वामी रामदेव, महेश योगी आदि अनेक धार्मिक गुरुओं ने योग सूत्र के एक या अनेक अंगों को अपनी शिक्षा का प्रमुख अंग बनाया है।

अष्टाङ्ग योग - योग के आठ अंग

महर्षि पतंजलि ने योग को **'चित्त की वृत्तियों के निरोध'** के रूप में परिभाषित किया है। योगसूत्र में उन्होंने पूर्ण कल्याण तथा शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शुद्धि के लिए **आठ अंगों वाले योग** का एक मार्ग विस्तार से बताया है। अष्टांग, आठ अंगों वाले, योग को आठ अलग-अलग चरणों वाला मार्ग नहीं समझना चाहिए; यह आठ आयामों वाला मार्ग है जिसमें आठों आयामों का अभ्यास एक साथ किया जाता है। योग के ये आठ अंग हैं

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्ति राविवेकख्यातेः ॥२८॥

अर्थः-योगाङ्गानुष्ठानात् = यम, नियम इत्यादि अष्टविध योग के अंगों का अनुष्ठान या आचरण करने से अशुद्धिक्षये= चित्तगत सभी दोषों का, पञ्चविध क्लेशों का अभाव होने से आविवेकख्यातेः:= विवेकख्याति (प्रकृति-पुरुष-भेद ज्ञान) के उदय पर्यन्त ज्ञानदीप्तिः = ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है। योग के अंगों के सतत सेवन करने से चित्तवृत्तियों का निरोध हो जाता है, चित्त का विक्षेप नहीं होता। अविद्या-अस्मिता इत्यादि क्लेशों की निवृत्ति हो जाने से ज्ञान के आलोक की प्राप्ति होती है । = योग के अङ्ग जो आगे वर्णन किये जाने वाले है, उन योग-अंगों के अनुष्ठान से, ज्ञानपूर्वक अभ्यास से, सतत सेवन करने से विवेक ज्ञान के उत्पन्न होने तक सभी प्रकार की अशुद्धियों का विनाश हो जाने से अर्थात् सत्वगुण बहुल चित्त के ज्ञान का आवरण करने वाले अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेश रुप पञ्चविध क्लेश रूपी अशुद्धियों के अभाव हो जाने से जो ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है अर्थात् विवेक ज्ञान के उदय होने तक क्रमशः रजोगुण एवं तमोगुण से अनभिभूत प्रकाशात्मक सत्त्वगुणविशिंष्ट चित्त का परिणाम होता है अर्थात् योगाङ्गों के अनुष्ठान से पञ्चविध क्लेशों का अभाव हो जाता है और दोष रहित विमल चित्त का केवल सात्त्विक परिणाम होता है। इस तरह ज्ञान के आलोक की प्राप्ति होती है। उस विवेकख्याति (प्रकृतिपुरुषविवेकज्ञान का) योगाङ्ग के अभ्यास से सात्त्विक परिणाम को प्राप्त होने वाला चित्त कारण है । इति अर्थः = यह अभिप्राय है ॥ २८ ॥ इन आठ योग-अङ्गों के अनुष्ठान या आचरण से सभी अशुद्धियों या क्लेशों का क्षय हो जाता है।

१. **यम** : पांच सामाजिक नैतिकता

(क) *अहिंसा* - शब्दों से, विचारों से और कर्मों से किसी को हानि नहीं पहुँचाना। इन पञ्चविध यमों में शरीर से प्राण को वियुक्त, पृथक् करने के उद्देश्य से किया गया कार्य या चेष्टा हिंसा है और वहीं हिंसा सभी अनर्थों का मूल कारण है। उसी हिंसा का अभाव अहिंसा है। सभी प्रकार से ही हिंसा का परित्याग के योग्य, हिंसा के त्याज्य होने के कारण सबसे पहले उस हिंसा के अभावरूपी अहिंसा का उल्लेख किया गया है।
(ख) *सत्य* - विचारों में सत्यता, परम-सत्य में स्थित रहना। वाणी तथा मन का अर्थ के अनुरूप रहना अर्थात् अर्थ का जैसे स्वरूप है उसी के अनुसार वाणी से कहना तथा मन से वैसा मनन करना ही सत्य है।

(ग) *अस्तेय* - चोर-प्रवृति का न होना। दूसरे के धन का अपहरण करना ही स्तेय या चोरी हैं। उस स्तेय का अभाव, दूसरे के धन, सत्त्व का अपहरण न करना ही अस्तेय है।

(घ) *ब्रह्मचर्य* - दो अर्थ हैं:

* चेतना को ब्रह्म के ज्ञान में स्थिर करना

* सभी इन्द्रिय-जनित सुखों में संयम बरतना। मुख्यतः उपस्थ इन्द्रिय के संयम को ब्रह्मचर्य कहते हैं।

(च) अपरिग्रह - आवश्यकता से अधिक संचय नहीं करना और दूसरों की वस्तुओं की इच्छा नहीं करना। भोग के साधनों का स्वीकार न करना, ग्रहण न करना ही अपरिग्रह है।

यम शब्द के द्वारा कह जाने वाले ये अहिंसा इत्यादि (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह- पाँच) योग सिद्धि में अङ्ग, सहायक रूप से वर्णन किये गये हैं

जाति-देश-काल-समयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् ॥३१॥

अर्थः- जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः = अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह नामक पाँचों यम, ब्राह्मणत्व आदि जाति, तीर्थ आदि देश, एकादशी-चतुर्दशी इत्यादि काल एवं ब्राह्मण भोजन इत्यादि समय है। इन जाति-काल-देश-समय चारों के अनवच्छिन्न अर्थात् इनके प्रतिबन्ध, सीमा से रहित सभी भूमि, अवस्थाओं में होने वाले महाव्रत हो जाते हैं अर्थात् जाति-देश-काल-समय की परिधि से रहित पालन किये जाने पर यम ही महाव्रत हो जाते हैं । = ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व इत्यादि जाति हैं। तीर्थ इत्यादि स्थान देश हैं, चतुर्दशी, एकादशी इत्यादि काल है। ब्राह्मण प्रयोजन इत्यादि समय है- इन जाति-देश-काल-समय चारों से न घिरे हुए, न रोके गये पूर्वोक्त (पहले वर्णन किये गये) अहिंसा इत्यादि (अहिंसा-सत्य-अस्तेय ब्रह्मचर्य अपरिग्रह) यम है। सभी क्षिप्त इत्यादि, (क्षिप्त -मूढ-विक्षिप्त-एकाग्र-निरुद्ध) चित्त की भूमियों में होने वाले, पालन किये जाने पर 'महाव्रत' इस रूप, नाम से कहे जाते है। जैसे कि ब्राह्मण का वध नहीं करूँगा। तीर्थ स्थान में किसी को नहीं मारूंगा। चतुर्दशी तिथि-काल में किसी का वध नहीं करूँगा। देव तथा ब्राह्मण के उद्देश्य के बिना, देव तथा ब्राह्मण के प्रयोजन के अतिरिक्त अर्थात् इनसे भिन्न प्रयोजन में किसी भी जीव की हिंसा नहीं करूँगा। इस प्रकार चार प्रकार के बाधकों के बिना, इन चार प्रकार के

विधान रूप बाधाओं या सीमाओं के अभाव में किसी प्राण को किसी भी स्थान पर किसी भी काल में किसी प्रयोजन के लिए किसी का वध नहीं करूँगा। इस रूप से, यहाँ जाति-देश-काल-समय की सीमा से रहित, निस्सीम अहिंसा का पालन है; अतएव यह महाव्रत है। इसी प्रकार सत्य इत्यादि में अर्थात् सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह में सम्बन्ध के अनुसार सम्बन्ध के अनुसार संयोजना, सम्बन्ध जोड़ना चाहिए इस प्रकार से विना निश्चय किए गए, सीमा से न बँधे हुए, नियंत्रित न किये गए सामान्य, साधारण, स्वाभाविक रूप से ही प्रवृत्त हुये, पालन किये गये, अहिंसा इत्यादि यम ही महाव्रत इस रूप, नाम से कहे जाते हैं। फिर दूसरी आवरण सीमा को न ग्रहण करना ही, इस रूप से पालन किए गये अहिंसा इत्यादि यम की ही संज्ञा महाव्रत है (॥३१॥ पातञ्जल योगसूत्र साधनपाद)

२. **नियम**: पाँच व्यक्तिगत नैतिकता

(क) *शौच* - शरीर और मन की शुद्धि। अर्थात् पवित्रता दो प्रकार की होती है:- बाहरी पवित्रता और आन्तरिक शौच (अन्तःकरण की पवित्रता/शुद्धता)। मिट्टी, जल इत्यादि से शरीर इत्यादि के अङ्गों का धोना, स्वच्छ करना बाह्य स्वच्छता, पवित्रता है। मैत्री इत्यादि अर्थात् मैत्री-करुणा-मुदिता-उपेक्षा के द्वारा चित्त में रहने वाले राग-द्वेष, क्रोध-द्रोह-ईर्ष्या-असूया-मद-मोह-मत्सर-लोभ इत्यादि मलों, कलुषों, अशुद्धियों का निराकरण करना ही आन्तरिक स्वच्छता, पवित्रता है।

(ख) *सन्तोष* - सन्तुष्ट और प्रसन्न रहना। तुष्टि ही सन्तोष है। अर्थात् स्वकर्तव्य का पालन करते हुये, प्रबन्ध के ही अनुसार प्राप्त फल से सन्तुष्ट हो जाना, किसी प्रकार की तृष्णा का न होना ही सन्तोष है।

तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ॥ १ ।॥
अर्थः, तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि= तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान भक्ति-विशेष, शरणागति, सभी कर्मफलों की समर्पण बुद्धि ही क्रियायोगः = क्रिया-योग है। ये क्रियायें योग की सिद्धि में साधन है, अतएव इनको क्रिया-योग अथवा कर्मयोग कहते हैं। इन्हीं तप, स्वाध्याय, ईश्वर-समर्पण-बुद्धि को क्रिया-योग कर्मयोग इस रूप से कहते हैं ।।१॥ (साधनपाद पातञ्जल-योगसूत्र)

(ग) *तप* - स्वयं से अनुशासित रहना। दूसरे शास्त्रों में वर्णन किये गये चान्द्रायण इत्यादि तप है।

(घ) *स्वाध्याय* - आत्मचिंतन करना। प्रणव पूर्वक, ओंकार के साथ मन्त्रों का जप, पाठ करना स्वाध्याय है।

(च) ईश्वर-प्रणिधान - ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण, पूर्ण श्रद्धा। सभी कर्मों का फल की अभिलाषा, कामना न रखते हुए उस सर्वश्रेष्ठ गुरु, ईश्वर में समर्पित करना ईश्वरप्राणिधान है।

अभ्यास किये गये ये तप इत्यादि, तप-स्वाध्याय-ईश्वरप्रणिधान चित्त में विद्यमान रहने वाले अविद्या इत्यादि अर्थात् अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेश क्लेशों को शिथिल, क्षीण करते हुए समाधि की उपकारिता उपयोगिता को प्राप्त होते हैं। इसलिये सबसे पहले क्रियायोग के विधान-पूर्वक, क्रियायोग के अभ्यास द्वारा योगी के द्वारा होना चाहिए अर्थात् योगी को क्रियायोग का अभ्यास करना चाहिये। इस विचार से क्रियायोग को कहा गया है, उपदेश, वर्णन किया गया है। यम, नियमों के पालन करने में हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्मचर्य, परिग्रह इत्यादि वितर्कों से बाधा उपस्थित होने पर बराबर प्रतिपक्ष की भावना करनी चाहिए अर्थात् उन्हीं वितर्कों में दोष दर्शन करना चाहिए । वितर्कों से बाधित होने पर उन्हीं में दोषों की भावना का चिन्तन करना चाहिए ।

३. **आसन**: योगासनों द्वारा शारीरिक नियंत्रण।

स्थिरसुखमासनम् ॥ ४६ ॥

अर्थः-स्थिरसुखं= स्थिर भाव से, निश्चल रूप से तथा सुखपूर्वक बैठने को, आसनं = आसन कहते हैं। अथवा जिसके द्वारा स्थिरता तथा सुख की प्राप्ति हो, वह आसन है। इसके द्वारा स्थिरभाव से तथा सुखपूर्वक बैठा जाता है इसलिये इसे आसन कहते हैं। यथा- पद्मासन, दण्डासन, स्वस्तिकासन इत्यादि।

४. **प्राणायाम**: श्वास-लेने सम्बन्धी खास तकनीकों द्वारा प्राण पर नियंत्रण

५. **प्रत्याहार**: इन्द्रियों को अंतर्मुखी करना

६. **धारणा**: एकाग्रचित्त होना

७. **ध्यान**: निरंतर ध्यान

८. **समाधि**: आत्मा से जुड़ना, शब्दों से परे परम-चैतन्य की अवस्था

प्रसिद्धि

पतंजलि द्वारा रचित इस ग्रंथ की प्रसिद्धि आधुनिक युग में बढ़ गई है। इस पुस्तक का अंग्रेजी सहित विश्व की कई भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। अभी हाल में ही इसका हिब्रू भाषा में अनुवाद हुआ है।

भाष्य

योगसूत्र पर बहुत से भाष्यग्रन्थ लिखे गए हैं, जिनमें कुछ प्रमुख हैं-

योगभाष्य : परम्परानुसार वेद व्यास इसके रचयिता माने जाते हैं। इसका रचना-काल 200-400 ईसा पूर्व का माना जाता है। यह योगसूत्र का सबसे पुराना भाष्य है। यह कहना कठिन है कि योगभाष्य अलग रचना है या योगसूत्र का पतञ्जलि द्वारा ही रचित अभिन्न अंग।[5]

तत्त्ववैशारदी : पतंजलि योगसूत्र के व्यास भाष्य के प्रामाणिक व्याख्याकार के रूप में वाचस्पति मिश्र का 'तत्त्ववैशारदी' प्रमुख ग्रंथ माना जाता है। वाचस्पति मिश्र ने योगसूत्र एवं व्यास भाष्य दोनों पर ही अपनी व्याख्या दी है। तत्त्ववैशारदी का रचना काल 841 ईसा पश्चात माना जाता है।

योगवार्तिक : योगसूत्र पर महत्वपूर्ण व्याख्या विज्ञानभिक्षु की प्राप्त होती है जिसका नाम 'योगवार्तिक' है। विज्ञानभिक्षु का समय विद्वानों के द्वारा 16वीं शताब्दी के मध्य में माना जाता है।

भोजवृत्ति : 'धारेश्वर भोज' के नाम से प्रसिद्ध व्यक्ति ने योगसूत्र पर जो 'भोजवृत्ति' नामक ग्रंथ लिखा है वह योगविद्वजनों के

बीच समादरणीय एवं प्रसिद्ध माना जाता है। भोज के राज्य का समय 1075-1110 विक्रम संवत माना जाता है। कुछ इतिहासकार इसे 16वीं सदी का ग्रंथ मानते हैं।

योगमणिप्रभा : रमानन्द सरस्वती (१६वीं शताब्दी)

पतंजलि योग सूत्र का कुछ हिंदी अनुवादित पुस्तक

- सांख्य एवं योगदर्शन - पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य, अखिल विश्व गायत्री परिवार

* राज योग - स्वामी विवेकानंद, रामकृष्ण आश्रम

* महर्षि पतंजलि योग दर्शन - स्वामी अड़गड़ानंद महाराज

* पातंजल योग सूत्र योग दर्शन - श्री नन्दलाल दशोरा

* पातञ्जलयोगदर्शनम् - स्वामी हरिहरानंद आरणय, कपिल आश्रम

* पातंजल योग प्रदीप - श्री ओमानन्द महाराज, गीता प्रेस

सार-संक्षेप

अथ योग अनुशासन ॥१॥
(पतंजलि को गुरु परम्परा में
मिली योग शिक्षा)

चित्तकी वृत्तियों का निरोध ही योग है ॥२॥

तब द्रष्टा अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है ॥३॥

वृत्तियों का सारुप्य होता है इतर समय में ॥४॥

वृत्तियाँ पाँच प्रकार की - क्लेशक्त और क्लेशरहित ॥५॥

१-प्रमाण, २-विकल्प, ३-विपर्यय, ४-निद्रा तथा ५-स्मृति ॥६॥

१-प्रमाण:

प्रमाण के तीन भेद हैं: १-प्रत्यक्ष, २-प्रमाण और ३-आगम, ॥७॥

विपर्यय वृत्ति मिथ्या ज्ञान अर्थात् जिससे किसी वस्तु के यथार्थ रूप का ज्ञान न हो ॥८॥

ज्ञान जो शब्द से उत्पन्न होता है, पर वस्तु होती नहीं, विकल्प है॥९॥

ज्ञेय विषयों के अभाव को ज्ञान का आलंबन, निद्रा ॥१०॥

अनुभव में आए हुए विषयों का न भूलना, स्मृति ॥११॥

अभ्यास तथा वैराग्य के द्वारा उनका निरोध ॥१२॥

उनमें स्थित रहने का यत्न, अभ्यास ॥१३॥

वह अभ्यास दीर्घ काल तक निरन्तर सत्कार पुर्वक सेवन किए जाने पर दृढ़ भूमिका वाला होता है ॥१४॥

देखे हुए सुने हुए विषयों की तृष्णा रहित अवस्था वशीकार नामक वैराग्य है ॥१५॥

वैराग्य, जब पुरुष तथा प्रकृति की पृथकता का ज्ञान, उससे परे परम् वैराग्य जब तीनों गुणों के कार्य में भी तृष्णा नहीं रहती ॥१६॥

वितर्क विचार आनन्द तथा अस्मिता नामक स्वरूपों से संबंधित वृत्तियों का निरोध सम्प्रज्ञात है ॥१७॥

(वैराग्य से वृत्ति निरोध के बाद) शेष संस्कार अवस्था, असम्प्रज्ञात ॥१८॥

जन्म से ही ज्ञान, विदेहों अथवा प्रकृति लयों को होता है ॥१९॥

(गुरु, साधन, शास्त्र में) श्रद्धा, वीर्य (उत्साह), बुद्धि की निर्मलता, ध्येयाकार बुद्धि की एकाग्रता, उससे उत्पन्न होने वाली ऋतंभरा प्रज्ञा - पाँचों प्रकार के

साधन, बाकि जो साधारण योगी हैं, उनके लिए ॥२०॥

तीव्र उपाय, संवेग वाले योगियों को शीघ्रतम सिद्ध होता है ॥२१॥

तीव्र संवेग के भी मृदु मध्य तथा अधिमात्र, यह तीन भेद होने से, अधिमात्र संवेग वाले को समाधि लाभ में विशेषता है ॥२२॥

या सब ईश्वर पर छोड़ देने से ॥२३॥ (ईश्वर प्रणिधान)

अविद्या अस्मिता राग द्वेष तथा अभिनिवेष यह पाँच क्लेश कर्म, शुभ तथा अशुभ, फल, संस्कार आशय से परामर्श में न आने वाला, ऐसा परम पुरुष, ईश्वर है ॥२४॥

उस (ईश्वर में) अतिशय की धारणा से रहित सर्वज्ञता का बीज है ॥२५॥

वह पूर्वजों का भी गुरु है, काल से पार होने के कारण ॥२६॥

उसका बोध कराने वाला प्रणव है (ॐ)॥२७॥

उस (प्रणव) का जप, उसके अर्थ की भावना सहित (करें) ॥२८॥

उससे प्रत्यक्ष चेतना की अनुभवी रूपी प्राप्ति होगी और अन्तरायों का अभाव होगा ॥२९॥

शारीरिक रोग, चित्त की
अकर्मण्यता, संशय, लापरवाही,
शरीर की जड़ता, विषयों की
इच्छा, कुछ का कुछ समझना,
साधन करते रहने पर भी उन्नति
न होना, ऊपर की भुमिका पाकर
उससे फिर नीचे गिरना, वित्त में
विक्षेप करने वाले नौ विघ्न हैं
॥३०॥

दुख, इच्छा पूर्ति न होने पर मन
में क्षोभ, कम्पन, श्वास प्रवास
विक्षेपों के साथ घटित होने वाले
॥३१॥
उनके प्रतिषेध के लिए एक तत्त्व
का अभ्यास करना चाहिए ॥३२॥

सुखी, दुखी पण्यात्मा तथा
पापात्मा व्यक्तियों के बारे में,
यथा क्रम मैत्री, करुणा, हर्ष तथा
उदासीनता, की भावना रखने से
चित्त निर्मल एवं प्रसन्न होता है
॥३३॥

या, श्वास प्रवास की क्रिया को
रोककर शरीर के बाहर स्थित
करना अथवा अन्तर में धारण
करने से वृत्ति निरोध होता है
॥३४॥

अथवा शब्द, स्पर्ष, रूप, गंध
वाली दिव्य स्तर की वृत्ति, उत्पन्न
होने पर चित्त वृत्ति का निरोध
करती है क्यिंकि वह मन को
बांधने वाली होती है ॥३५॥

अथवा ज्योतिषमती नाम की
विशोका ज्योतियों से ॥३६॥

अथवा उनका महात्माओं का
ध्यान करने से, जिनका चित्त
वीतराग हो गया है ॥३७॥

अथवा निद्रा में ध्यान करने से
॥३८॥(पहले निद्रा को सत्वगुणी
बनाना आवश्यक है, गीता में कहा
गया है कि जब सब नींद में होते
हैं, योगी जागता है। उससे यही
अर्थ बनता है।)

अथवा जैसे भी (श्रद्धा से
अभिमत) ध्यान ॥३९॥

(उस ध्यान से) परमाणु से परम
महान तक उस निरुद्ध योगी की
वशीकार अवस्था हो जाती है
॥४०॥

क्षीण हो गयी हैं वृत्तियाँ जिसकी,
अभिजात मणि के समान वह
द्रष्टा, वृत्तियों से उत्पन्न ज्ञान, जिन
विषयों का ज्ञान ग्रहण किया
जाता है, या जिस पर उस चित्त
की सथिति होती है, उसी के
समान रंगे जाने से, उसी के समान
हो जाता है ॥४१॥

उन में से शब्द अर्थ तथा ज्ञान के
तीनों विकल्प सहित मिली हुई,
सवितर्क समापत्ती है ॥४२॥

शब्द तथा ज्ञान, इन विषयों के
हट जाने पर तथा अपने स्वरूप
की भी विस्मृती सी हो जाने पर,

जब अर्थ मात्र का आभास ही शेष रह जाता है, निर्वितर्क सम्प्रज्ञात है ॥४३॥

इस प्रकार सवितर्क एवं निर्वितर्क समाधि के निरुपण से सविचार एवं निर्विचार सम्प्रज्ञात, जो कि सूक्ष्म विषय है, की भी व्याख्या हो गयी ॥४४॥

उन विषयों की सूक्ष्मता अव्यक्त प्रकृति तक है ॥४५॥

आगम तथा अनुमान से उदय ज्ञान से यह ज्ञान अलग है क्योंकि इस में विशेष रूप से अर्थ का साक्षात्कार होता है ॥४९॥

उस ऋतम्भरा प्रज्ञा से उदय होने वाले संस्कार, बाकी सब संस्कारों को काटने वाले होते हैं ॥५०॥
ऋतम्भरा प्रज्ञा के संस्कारों का भी निरोध हो जाने से, सभी संस्कारों का बीज नाश हो जाने से निर्बीज समाधि होती है ॥५१॥

साधनपाद

तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान, यह क्रिया योग है ॥१॥

क्रिया योग का अभ्यास समाधि प्राप्ति की भावना से, वित्त में विद्यमान क्लेशों को क्षीण करने के लिए है ॥२॥

अविद्या अस्मिता राग द्वेष
अभिनिवेश यह पाँच क्लेश है
॥३॥

अविद्या बाकी चारों, अस्मिता
राग द्वेष अभिनिवेश, इन क्लेशों
की उत्पत्ती के लिए क्षेत्र रूप है
॥४॥

अनित्यत्व अपवित्र दुख, अनात्म
में क्रमशः नित्यत्व, पवित्रता, सुख
तथा आत्मभाव की बुद्धि का होना
अविद्या है ॥५॥

देखने वाली शक्ति तथा देखने का
माध्यम चित्त शक्ति दोनों की
एकात्मता अस्मिता है ॥६॥

सुख भोगने पर, उसे फिर से
भोगने की इच्छा बनी रहती है,
वह राग है ॥७॥

दुख भोगने पर, उससे बचने की
इच्छा, द्वेष है ॥८॥

स्वभाव से प्रवाहित होने वाला,
सामान्य जीवों की भाँति ही
विद्वानों को भी लपेट लेने वाला,
अभिनिवेश है ॥९॥
(शरीर के बचाव की इच्छा)

क्रिया योग द्वारा तनु किए गए
पंच क्लेश, शक्ति के प्रति प्रसव
क्रम द्वारा त्यागे जाने योग्य हैं, जो
सूक्ष्म रूप में हैं ॥१०॥
(जब चेतना, प्रत्यक् चेतना होकर
ऊपर की ओर चढ़ती है, तो कारव
को कारण में विलीन करती है,

इसे शक्ति का प्रति प्रसव क्रम कहते हैं।)

ध्यान द्वारा त्याज्य उन की वृत्तियाँ हैं ॥११॥

क्लेश ही मूल हैं उस कर्माशय के जो दिखने वाले अर्थ वर्तमान, तथा न दिखने वाले अर्थ भविष्य मे् होने वाले जन्मों का कारण हैं ॥१२॥

जब तक जीव को क्लेशों ने पकड़ रखा है, तब तक उसके कारण उदय हुए कर्माशय का फल, जाति आयु तथा भोग होता है ॥१३॥

वह आयु जाति भोग की फसल सुख दुःख रूपी फल वाली होती है, क्योंकि वह पुण्य तथा अपुण्य का कारण है ॥१४॥

परिणाम दुख, ताप दुःख तथा संस्कार दुःख बना ही रहता है, तथा गुणों की वृत्तियों के परस्पर विरोधी होने के कारण, सुख भी दुःख ही है, ऐसा विद्वान जन समझते हैं ॥१५॥

त्यागने योग्य है वह दुःख जो अभी आया नहीं है ॥१६॥ (यह योग का उद्देश्य है)

दुख का मूल कारण, द्रष्टा का दृश्य में संयोग, उलझ जाना, है ॥१७॥

प्रकाश सत्व, स्थिति अर्थ तम् तथा क्रियाशील अर्थ रज्, पंचभूत तथा

इन्द्रियाँ अंग हैं जिसके, भोग तथा मोक्ष देना जिसका प्रयोजन है, वह दृश्य है ॥१८॥(योग में दृश्य को द्रष्टा का सेवक अथवा दास माना गया है, नीचे सूत्र २१ देखें)

गुणों के चार परिणाम हैं, विशेष अर्थ पाँच महाभूत आकाश वायु अग्नि जल तथा पृथ्वी, अविशेष अर्थ प्रकृति की सूक्ष्म तन्मात्राएँ शब्द स्पर्ष रूप रस और गंध तथा छठा अहंकार, लिंग अर्थ प्रकृति में बीजरूप, अलिंग अर्थ अप्रकट ॥१९॥

देखने वाला द्रष्टा अर्थ आत्मा, देखने की शक्ति मात्र है, इसलिए शुद्ध भी है, वृत्तियों के देखने वाला भी है ॥२१॥

दृश्य का अस्तित्व क्यों है? केवल द्रष्टा के लिए ॥२१॥

जो मुक्ति, सिद्धि को प्राप्त हो गये हैं, उनके लिए दृश्य समाप्त होकर भी, अन्य साधारण जीवों के लिए तो वैसा ही बना रहता है ॥२२॥

दृश्य के स्वरूप का कारण क्या है? उसके स्वामि अर्थ द्रष्टा की शक्ति ॥२३॥

(दृश्य के संयोग का, उलझने का) कारण अविद्या है ॥२४॥

उस अविद्या के अभाव से, संयोग का भी अभाव हो जाता है, यही

हान है जिसे कैवल्य मुक्ति कहा जाता है ॥२५॥

विवेक अर्थ दृश्य तथा द्रष्टा की भिन्नता का निश्चित ज्ञान, हान का उपाय है ॥२६॥

उस विवेक ख्याति की सात भुमिकिएं हैं ॥२७॥

अष्टांग योग के अनुष्ठान से अशुद्धि का क्षय तथा विवेक ख्याति पर्यन्त प्रकाश होता है ॥२८॥

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि, यह योके आठ अंग हैं ॥२९॥

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि, यह योग के आठ अंग हैं ॥२९॥

दूसरे को मन, वाणी, कर्म से दुःख न देना, सत्य बोलना, ब्रह्मचर्य, तथा संचय वृत्ति का त्याग, यह पाँच यम कहे जाते हैं ॥३०॥

ये यम जाति, देश, काल तथा समय की सीमा से अछूते, सभी अवस्थाओं में पालनीय, महाव्रत हैं